15

विकास सम्बन्धी कुछ मुद्दे

जैसा कि विदित है कि विकास एक व्यापक अवधारणा है। विकास में अनेक मुद्दे आते हैं। कुछ महत्वपूर्ण विषयों का वर्णन पहले के अध्यायों में किया जा चुका है। यहाँ कुछ ऐसे मुद्दों पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है जो अपेक्षाकृत पुस्तकों में प्राप्त नहीं होते हैं तथा विद्यार्थियों के लिए एक समस्या बन जाती है। समस्या इस रूप में बन जाती है कि पूछे गये प्रश्नों का उत्तर कैसे और कहाँ से ढूँढ़कर दिया जाये। विद्यार्थियों की इसी कठिनाई को दूर करने के लिए यह अध्याय लिखने का प्रयास किया गया है। प्रमुख मुद्दे हैं :

1. पंचवर्षीय योजना और नौकरशाही,
2. विकास में जिलाधीश की भूमिका,
3. विकास में पंचायती राज और शहरी स्वशासन की भूमिका,
4. विकास में ब्लॉक विकास अधिकारी की भूमिका,
5. विकसित और विकासशील देशों में लोक प्रशासन,
6. नागरिक और प्रशासन।

पंचवर्षीय योजना और नौकरशाही

योजनाओं की प्रशासकीय समस्याएँ अधिक जटिल हैं। आज की प्रधान समस्या यह है कि विश्व की दो-तिहाई जनसंख्या जिन देशों में रहती है, उनका विकास कैसे किया जाये ? यह समस्या बहुपक्षीय है। इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है। यहाँ इस समस्या पर गम्भीर किन्तु सीमित विचार किया गया है, विशेषकर इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया गया है कि पंचवर्षीय योजना में विकास की निर्धारित दिशा में सामान्यतः लोक प्रशासन और विशेषकर नौकरशाही को किन विशिष्ट चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पाँचवीं योजना में वर्णित कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के परिपालन में देश की नौकरशाही पूर्णतः संलग्न रही। नौकरशाही और विशेषकर सम्पूर्ण राजनीतिक प्रणाली में इस दायित्व के सम्पादन के लिए विशेष प्रकार का परिवर्तन अपेक्षित है। हमारी (भारत) अब तक की सभी पंचवर्षीय योजनाओं में प्रशासकीय समस्याओं का अधूरा वर्णन रहा है। यह एक सोचनीय और आश्चर्यजनक बात है। देश अनेक पंचवर्षीय योजनाओं को पूरा कर चुका है, अतः यह आशा करना स्वाभाविक है कि इस पंचवर्षीय लेख में प्रथम योजना के प्रारम्भ होने के बाद उसके लागू सम्बन्धी मुख्य अनुभवों का उल्लेख किया जाये। हमारा अनुभव भी यह है कि विभिन्न विकास योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में लोक प्रशासन एक बड़ी बाधा रहा है। लोक प्रशासन विभिन्न नीतियों एवं कार्यक्रमों के परिपालन के लिए एक सबल अभिकरण है, अतः क्रियान्वयन

सम्बन्धी उसकी कमियाँ, दोष एवं सम्बन्धित अपूर्णताएँ हमारे एवं नियोजकों, दोनों के लिए चिन्ता का विषय रहा है। यद्यपि योजना के उपर्युक्त उल्लेखित लेख के अन्त में इसका संक्षिप्त उल्लेख किया गया है जो अपर्याप्त है। उक्त मत इस प्रकार है : "एक प्राचीन ढाँचे और मन्दगति-प्रधान कार्य-पद्धति एवं योजना के लक्ष्यों की पूर्ति सम्बन्धी कार्यों में असंगति है। आवश्यकता इस बात की है कि योजना से उत्पन्न चुनौती का सामना करने हेतु उसके अनुरूप प्रशासकीय संगठन एवं कार्य-पद्धति के विकास पर ध्यान दिया जाये। प्रशासन में विशेष योग्यता या व्यवसायवाद को आश्रय दिया जाना चाहिए। प्रशासक में दूसरों के विचारों एवं कार्यों पर टिप्पणी मात्र करने के बजाय उन्हें क्रियाशील नेतृत्व प्रदान करने की योग्यता एवं क्षमता होनी चाहिए। उसे परिणामों के प्रति भी उत्तरदायी होना चाहिए। सार्वजनिक क्षेत्र के संचालन एवं क्रियान्वयन में पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है।"

स्पष्ट है कि पाँचवीं पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी उपर्युक्त लेख में प्रशासकीय कर्तव्यादेशों एवं समस्याओं का उल्लेख नहीं किया गया जबकि इस लेख का वास्तविक उद्देश्य ही यही था। इस लेख से ऐसा विदित होता है कि यह मान लिया गया है कि लोक प्रशासन योजना को निश्चय ही क्रियान्वित कर सकेगा और योजना में निर्धारित विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति की क्षमता वर्तमान लोक प्रशासनतन्त्र में है। यह सब इस कटु सत्य की उपेक्षा करना-सा प्रतीत होता है; अथवा हम किसी तरह यह स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि स्वयं लोक प्रशासन ही विकास में एक बाधा है, तथा योग्य प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव है। ऐसा विदित होता है कि उसे क्रियान्वयन या परिपालन की चिन्ता ही नहीं है। इससे पूर्व की योजनाओं के विषय में भी लोक प्रशासन उनके परिपालन हेतु शायद ही चिन्तित रहा था। सत्य तो यह है कि हम सबको—सम्पूर्ण राष्ट्र को—ऐसे कार्यों को न करने के लिए दोषी ठहराया जाता है जिन्हें हम कर ही नहीं सकते।

योजना में प्रशासकीय योगदान सम्बन्धी कमी या अपूर्णता के कारण को शीर्षस्थ नियोजकों की पृष्ठभूमि द्वारा योजना भवन में विदेशी विशेषज्ञों के साथ होने वाले परामर्श के सन्दर्भ में ही सम्भवतः समझा जा सकता है। योजना आयोग विशेषज्ञों का निकाय है, परन्तु उसे केवल आर्थिक मामलों विषयक विशेष योग्यता ही प्राप्त है। यह निर्विवाद है कि आर्थिक दृष्टि से हमारी योजना व्यापक होनी चाहिए और पाँचवीं पंचवर्षीय योजना इस दृष्टि से निश्चित व्यापक थी। उदाहरण के लिए, आर्थिक पक्ष के अतिरिक्त योजना का निश्चय ही प्रशासकीय, राजनीतिक एवं समाजशास्त्रीय क्षेत्र से भी सम्बन्ध था। इसलिए योजना आयोग का यह भी दायित्व था कि वह यह खोज करता कि ये विभिन्न विषय योजना में किस प्रकार योग दे सकते हैं। लेकिन इनमें से किसी को भी योजना आयोग ने कोई स्थान नहीं दिया। एक ओर जहाँ आयोग को योजना के आर्थिक पहलुओं पर परामर्श देने के लिए अर्थशास्त्रियों की एक समिति है, समाज-विज्ञानशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों, लोक प्रशासन के विद्वानों से कोई परामर्श नहीं लिया जाता। अतः इस निष्कर्ष पर पहुँचना कुछ गलत नहीं है कि योजना भवन में उस ज्ञान का सर्वथा अभाव है जो इन विषयों द्वारा सम्भवतः प्रदान किया जा सकता है, और योजना भवन स्वयं इस दृष्टि से अपूर्ण है क्योंकि सामान्यतः उसे समाज-विज्ञान विषयक विषय एवं विशेषतः लोक प्रशासन का कोई ज्ञान नहीं होता। यह सही है कि योजना आयोग को प्रशासकों की सेवाएँ प्राप्त होती हैं, लेकिन उनसे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वे योजना विषय सम्बन्धी प्रशासकीय प्रश्नों पर अपना परामर्श दें। इसी प्रकार राजनीतिज्ञ भी योजना आयोग से सम्बन्धित हैं, परन्तु वे सभी दैनिक राजनीति के पचड़े में बुरी तरह उलझे रहते हैं। इनके व्यक्तिगत हित योजना के समग्र रूप अर्थात् सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणाली के पूर्ण एवं वस्तुगत स्वरूप को आँकने में बाधक हैं।

ये राजनीति के खिलाड़ी होते हैं, अतः इनकी अपेक्षाकृत राजनीति से बाहर रहने वाले व्यक्ति योजना के समग्र स्वरूप को जान सकते हैं और इसको जानने का प्रयत्न भी करते हैं।

वास्तव में, सत्य यह है कि कोई भी राजनीतिक कार्यपालिका न तो लोक प्रशासन की उपेक्षा कर सकती है और न ही उसकी इच्छानुसार कार्य करने से रोक पाती है। लोक प्रशासन की सीमा के बाहर जाने के प्रयत्न व्यर्थ ही जाते हैं। ऐसा नहीं है कि इस कमी का आभास शासन को न हो, और विशेष अवसरों पर उसकी अभिव्यक्ति भी होती है। प्रधानमन्त्री ने अपने सहयोगियों को पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के लिए प्रताड़ित करते हुए कहा था : "उग्र नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक लोक संगठन और प्रशासकीय ढाँचा कहाँ हैं ?"[1] तत्कालीन योजनामन्त्री **सी. सुब्रह्मण्यम** ने भी इसी प्रकार की शंका व्यक्त की थी : "प्रश्न यह है कि हम कहाँ तक योजना को क्रियान्वित करने की स्थिति में हैं ?"[2] इस प्रकार के विचारों के भावी विकास हेतु होने वाले प्रयासों की गति, क्षेत्र एवं विभिन्नता जैसी बातों के निर्धारण पर और प्रशासकीय नेतृत्व एवं योग्यता के विकास की दशा में निश्चित प्रयत्न की दृष्टि से भी कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा है।

अब आठवीं और नवीं पंचवर्षीय योजना के व्यापक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रशासन पर विशेष दायित्व है। योजना के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए देश में संघीय व्यवस्था होते हुए भी राजनीतिक सहयोग एवं अनुशासन की बहुत आवश्यकता है। यद्यपि यहाँ उल्लेखित बातों का सम्बन्ध मूलतः योजना के प्रशासकीय पहलुओं पर ध्यान देना है, किन्तु शासन की व्यापक प्रणाली पर विभिन्न मात्राओं एवं विविध रूपों में लोक प्रशासन की निर्भरता का भी इसमें उल्लेख होना चाहिए और राजनीतिक नेतृत्व को अपनी सार्वजनिक सेवा, ईमानदारी, मेहनत, दृढ़ता, मितव्ययता एवं सच्चरित्रता के उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए। लोक-कल्याणकारी राज्य में शासन द्वारा सबसे अधिक धन व्यय किया जाता है, क्योंकि धन वितरण के उसे अनेक अवसर प्राप्त होते हैं। यदि शासक वर्ग सार्वजनिक धन का अपव्यय करते हैं तो ऐसी स्थिति में समाजवाद केवल सार्वजनिक चर्चा का विषय एवं व्यक्तिगत लाभ का उपकरण मात्र बनकर रह जायेगा। अतः ऐसी स्थिति से जनता के हितों की रक्षा की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में अस्पष्टता एवं सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है। एक सुझाव यह दिया जा सकता है कि शासन के राजनीतिक अंग को गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से सशक्त बनाया जाना चाहिए। प्रत्येक मन्त्रालय में मन्त्री के अतिरिक्त कनिष्ठ मन्त्रीगण होने चाहिए जिनकी संख्या मन्त्रालय के कार्यभार की प्रकृति एवं क्षेत्र के अनुरूप हो। राजनीतिक नेता को एक धार्मिक व्यक्ति की तरह अपने कार्य स्पष्ट एवं सुपरिभाषित नीतियों, कालावधि के अनुरूप कार्यक्रम एवं उसके क्रियान्वयन सम्बन्धी व्यवस्था में लग जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में सेवीवर्ग से परामर्श करना चाहिए। राजनीति में स्पष्टता के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह अब भलीभाँति स्पष्ट हो चुका है कि देश में बहुचर्चित भूमि-सुधार की असफलता का कारण है समान रूप से प्रशासकीय उपेक्षा, राजनीतिक अनिर्णयता एवं अस्थिरता। साथ ही, लोक प्रशासन लोक भावनाओं के प्रति तभी संवेदनशील रह सकता है जब ठोस राजनीतिक अधीनता, नियन्त्रण एवं निर्देशन में निरन्तर कार्य करे।

योजना में उल्लेखित उद्देश्यों की पूर्ति देश में शासन के तीनों स्तरों—केन्द्रीय, राजकीय और स्थानीय—की क्षमता, सक्रिय योग एवं सहयोग पर निर्भर है। वर्तमान युग सहयोगी संघवाद का युग है। अतः इस प्रकार का सहयोग स्वयंसिद्ध-सा प्रतीत होता है। फिर भी, इसका स्पष्ट उल्लेख यहाँ किया जाना आवश्यक इसलिए है क्योंकि भूतकाल में इस दिशा में समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। हमें इस ओर से आँखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिए।

राज्य-स्तरीय लोक प्रशासन प्रधानतः नवीन कार्यों का अधिकांश भार वहन करता है। अतः गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से उन्हें पर्याप्त शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है जिससे वे विकास कार्यक्रमों का सम्पादन करने के वांछित उपकरण सिद्ध हो सकें। इसके लिए ठोस कदम उठाना आवश्यक है। 1947 के बाद विभिन्न प्रशासकीय सुधार आयोगों ने इस दिशा में विस्तृत सुझाव दिये हैं। इस दिशा में और सुधार किये जा सकते हैं। सुपरिचित कालावधि प्रणाली को, जिसका आजकल पूर्ण रूप से पालन नहीं किया जाता, व्यवस्थित रूप से लागू किया जाना चाहिए। केन्द्रीय शासन में कालावधि व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों से आने वाले राज्य कर्मचारियों को अवधि समाप्त होने पर पुनः राज्य-सेवा में लौटा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कालावधि व्यवस्था को राज्यों में भी मुख्य कार्यालय एवं क्षेत्रीय पदों के सम्बन्ध में कठोरता से लागू करना चाहिए, और दोनों पदाधिकारियों का नियमित स्थानान्तरण होते रहना चाहिए। राज्य कर्मचारियों की प्रशासनिक क्षमता में वृद्धि के लिए श्रेष्ठ प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

स्थानीय स्वशासन अब जबकि पंचायती राज व्यवस्था लागू हो चुकी है, ग्रामीण एवं शहरी पर पूर्ण सुधार आवश्यक हैं। अधिकांश राज्यों में इस स्तर पर सुधारों की पूर्ण उपेक्षा की गयी है। यह उचित नहीं है। अतः विभिन्न राज्यों को विभिन्न स्थानीय शासन विषयक सुधार प्रतिवेदनों का अध्ययन करना चाहिए, और आवश्यक सुधारों को लागू करना चाहिए जिससे पंचायती राज व्यवस्था प्रभावशाली ढंग से कार्य सम्पादित कर सके।

लोक प्रशासन की दृष्टि से आठवीं पंचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन में पूर्व योजनाओं की तुलना में अधिक दक्षता एवं विशेष योग्यता की आवश्यकता है। यह सत्य नवीं योजना के सम्बन्ध में भी लागू होता है। योग्य व्यक्तियों की भर्ती, उन्हें अविलम्ब पदारूढ़ करना और लोक सेवा में आवश्यक संगठनात्मक परिवर्तनों का तुरन्त सम्पादन अत्यन्त आवश्यक है। लोक सेवा में विशेषज्ञों एवं कुशल प्रशासकों की बड़ी संख्या में भर्ती करनी चाहिए और वर्तमान सामान्यवादी प्रशासक-प्रधान लोक-सेवकों में उनके स्थान एवं भूमिका का निर्धारण करने की आवश्यकता है।

शासन के सभी स्तरों पर प्रशासकीय योग्यता के विकास सम्बन्धी योजनाएँ बनायी जानी चाहिए तथा उन्हें अविलम्ब लागू किया जाना चाहिए। कुशल एवं विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा प्रशासकीय अनुभव एवं प्रशिक्षण लेने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए, ताकि शासन के विभिन्न स्तरों एवं क्षेत्रों में प्रशासकीय दायित्व सम्बन्धी विभिन्न पदों पर उन्हें नियुक्त किया जा सके।

नौकरशाही का यह निश्चित दायित्व है कि ग्रामीण एवं उपेक्षित क्षेत्र में जनता के मध्य कार्य करने की प्रवृत्ति विकसित करें। प्रशासक का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह विभिन्न प्रशासकीय कार्यों का भली प्रकार सम्पादन करे। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि लोक प्रशासन के संगठन एवं कार्य-प्रणाली में परिवर्तन किये जायें तथा नौकरशाही का दृष्टिकोण भी बदले। इसके अतिरिक्त, लोक सेवा को व्यापक सामाजिक आधार भी प्रदान करें।

योजनाओं को तैयार करने के लिए व्यापक पैमाने पर वित्तीय स्रोतों की भी आवश्यकता होती है। लोक प्रशासन का विशेष दायित्व कर वसूल करना है। अतः इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। शासन के तीनों ही स्तरों पर कर-प्रणाली को गतिशील किया जाना चाहिए। वर्तमान वित्तीय नियन्त्रण की प्रचलित व्यवस्था विकासशील अर्थव्यवस्था के अनुरूप नहीं है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसमें समयानुकूल आवश्यकताओं के अनुरूप सुधार किये जायें।

लोक प्रशासन के विभिन्न स्तरों को नियमित रूप से जनाकांक्षा और इच्छाओं की जानकारी होनी चाहिए। इस दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि शासन की नीति-निर्माण प्रक्रिया एवं उसके क्रियान्वयन में नागरिक एवं सम्बन्धित हित-समूहों को भाग लेने के अधिकाधिक अवसर हों।

धन की मितव्ययता का भी लोक प्रशासन में अत्यन्त महत्व है। यह एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इस समस्या के महत्व के समर्थन में एक प्रमाण देना पर्याप्त होगा। 1950-51 में केन्द्रीय सरकार की प्रशासकीय सेवाओं पर 21.3 करोड़ रुपया खर्च हुआ था। 1960-61 में यह राशि बढ़कर 58.7 करोड़ रुपये और 1962-63 में 75.2 करोड़ रुपये हो गयी थी। इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि 1950-51 से 1960-61 तक इस खर्च में 27.5% वृद्धि हुई थी। प्रशासकीय सेवाओं पर खर्च में 1960-61 से 1962-63 तक के केवल दो वर्षों में ही 28% की वृद्धि हुई थी। प्रश्न यह है कि विश्व के एक गरीब देश की लोकतान्त्रिक सरकार को क्या इतना व्ययसाध्य होना चाहिए ? एक बार **राष्ट्रीय विकास परिषद** ने यह सुझाव[3] दिया था कि कर-संग्रह हेतु होने वाले प्रशासकीय व्यय को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाना चाहिए कि वह किसी भी स्थिति में 5% से अधिक न होने पाये। एक प्रकार से यह कुछ हास्यास्पद-सा लगता है कि तृतीय वेतन आयोग द्वारा प्रतिवेदन देने से पूर्व ही उपागम सम्बन्धी लेख प्रस्तुत कर दिया गया था, जबकि तृतीय वेतन आयोग ने केन्द्रीय शासन के कर्मचारियों के बढ़े हुए वेतनों की घोषणा की। परिणाम यह होगा कि राज्यों के कर्मचारी भी इसी प्रकार की माँगें प्रस्तुत करेंगे। पंचम वेतन आयोग द्वारा घोषित वेतन की माँग राज्यों के कर्मचारियों द्वारा की जा रही है।

अन्तिम, राजनीतिक कुशलता एवं प्रशासकीय क्षमता को पृथक रूप से इस प्रकार निर्देशित किया जाना चाहिए कि 'नरम राज्य' (Soft State) को 'कठोर राज्य' (Hard State) में परिवर्तित किया जा सके। यह हमारे लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। **गुन्नार मिर्डल** का मत है कि "अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ यह भी एक महत्वपूर्ण तत्व है जो सम्मिलित रूप से किसी देश को अविकसित बनाते हैं। अधिक सामाजिक अनुशासन के बिना विकास कार्य में अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, और कुछ मामलों में विलम्ब भी हो सकता है। 'नरम राज्य' शब्द के प्रयोग में विभिन्न प्रकार के वे सभी सामाजिक अनुशासन आ जाते हैं जिनमें विधि-पालन एवं क्रियान्वयन सम्बन्धी दोष, विभिन्न स्तरों के प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा प्राप्त आदेशों एवं नियमों का व्यापक उल्लंघन तथा ऐसे व्यक्तियों एवं व्यक्ति-समूहों के साथ अक्सर मुठभेड़ (जिनके कार्य एवं आचरण को उन्हें नियमित करना चाहिए) शामिल हैं। 'नरम राज्य' की धारणा में भ्रष्टाचार भी निहित है। विभिन्न प्रकार के ये व्यवहार इस अर्थ में परस्पर सम्बन्धित हैं कि वे एक-दूसरे को कार्य-कारण अनुदेश द्वारा अनुमति प्रदान करके सामूहिक रूप से प्रभावित तथा प्रोत्साहित करते हैं।"[4]

अतः यह आशा एवं विश्वास है कि नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उद्यम से सम्बन्धित प्रशासकीय पहलुओं, प्रश्नों एवं परिश्रमों का अधिक सतर्कता से विश्लेषण किया जायेगा। यह कम महत्वपूर्ण कार्य नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो हमारे देश ने शासन को सदैव ही कम एवं उद्देश्यों या लक्षणों को अधिक महत्व दिया है। फलस्वरूप, दोनों में समन्वय का सदैव अभाव रहा है। विकास के लिए सरकारी-तन्त्र एवं नौकरशाही में सूझबूझ तथा तालमेल की आवश्यकता है।

विकास में जिलाधीश की भूमिका

जिलाधीश जिला प्रशासन के प्रमुख के रूप में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में अद्वितीय है। जिले के मुख्य कार्यपालिका अधिकारी के रूप में जिलाधीश समस्त क्षेत्र के प्रशासन के

प्रबन्ध के प्रति उत्तरदायी होता है। 1947 में स्वतन्त्रता के बाद देश के समक्ष नवीन समस्याएँ आयीं और उनका बोझ पूर्व से अति भारित जिलाधीश के कन्धों पर पड़ा। स्वाधीनता के बाद अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक शक्तियों के कारण जिलाधीश की भूमिका में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। साथ में उसके विकास कार्य बढ़े हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना तथा लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा स्वीकार करने के फलस्वरूप जिलाधीश 'विकास अधिकारी' के रूप में अधिक कार्य करने लगा है। जिले में विकास कार्य का समन्वय करना, विकास कार्यों में आने वाली बाधाओं का निराकरण करना, विकास कार्यों के सम्बन्ध में सामयिक एवं तात्कालिक प्रतिवेदन उच्च अधिकारियों को भेजना आदि उसके प्रमुख उत्तरदायित्व हैं। वह जिले के विकास तथा समाज कल्याणकारी विभागों के अध्यक्षों को निर्देशन, परामर्श एवं सहयोग की भूमिका अदा करता है। जिले के विकास अधिकारियों के सम्बन्ध में उसे प्रशासनिक और अनुशासनात्मक नियन्त्रण की शक्तियाँ प्राप्त हैं। इस क्षेत्र में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। उसको पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है तथा वर्तमान परिपेक्ष में उसकी भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। विकास प्रशासन के सन्दर्भ में जिलाधीश का विकास कार्यों में अद्वितीय स्थान है। जिला स्तर पर सामुदायिक विकास कार्यों में समन्वय तथा सहयोग लाने के लिए योजनाओं के निर्माण से लेकर लागू करने के प्रति उत्तरदायी होता है। विकास कार्य में आने वाली बाधाओं का वही निराकरण करता है। अब बदली हुई परिस्थिति में जिलाधीश से यह अपेक्षा की जाती है कि वह लोगों के साथ मिलकर कार्य करे। अब वह जनता से दूर नहीं रह सकता। वह आज भी जिले के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में अत्यधिक सक्रिय भूमिका निभाता है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में शासन और जनता के बीच सत्तारूढ़ दल का संवाद माध्यम है। अब वह सत्तारूढ़ राजनीतिक दल के शासन की नीतियों एवं कार्यक्रमों के कार्यपालन के यन्त्र में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जिलाधीश की विकास कार्यों में भूमिका के कुछ प्रतिरूप देखने को मिलते हैं। प्रथम, प्रतिरूप का उदाहरण है महाराष्ट्र। महाराष्ट्र में जिलाधीश को जिला परिषद से बाहर रखा गया है और उसके विकास प्रशासन की भूमिका में भी कमी आयी है। जिला स्तर पर विकास कार्यों का उत्तरदायित्व प्रमुख कार्यकारी अधिकारी के जिला स्तरीय कार्यों में स्पष्ट एवं विवेक-सम्मत विभाजन रेखा खींच दी गयी है। विकास कार्यों से सम्बन्धित समस्त विभाग के जिला स्तर अधिकारी तथा उनके अमले को पूर्णतः प्रमुख कार्यकारी अधिकारी के नियन्त्रण में रखा गया है। प्रमुख कार्यकारी अधिकारी जिला परिषद के अन्तर्गत आने वाली स्थानीय विकास कार्यों के लिए उत्तरदायी है जबकि जिलाधीश बड़ी राज्य योजनाओं और अन्य प्रशासकीय कार्यों के प्रति उत्तरदायी है। इस व्यवस्था से उसकी स्थिति एवं भूमिका पर कोई खास अन्तर नहीं पड़ा है। सत्य तो यह है कि वह अपना कार्य अधिक प्रभावपूर्ण और कुशलता से करता है।

गुजरात दूसरे प्रतिरूप का उदाहरण है। गुजरात में जिलाधीश जिला परिषद का सह-सदस्य होता है। वहाँ जिला विकास अधिकारी द्वारा समस्त विकास सम्बन्धी कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। इससे जिलाधीश का कार्य बोझ कम हुआ है। तृतीय श्रेणी में पश्चिम बंगाल आता है जिसने अन्य राज्यों की तुलना में अलग व्यवस्था अपनायी है। वहाँ जिलाधीश के अन्तर्गत एक अलग विकास शाखा है, जिसका प्रमुख अतिरिक्त जिलाधीश होता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत जिलाधीश को विकास गतिविधियों से अलग रखा गया है। यहाँ जिलाधीश को जिला परिषद से बाहर रखा गया है। चतुर्थ श्रेणी में आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु जैसे राज्यों में जिलाधीश को अनेक दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। जिला परिषद से ग्राम पंचायत स्तर तक उसे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह विकास गतिविधियों का प्रमुख और जिला

परिषद का अध्यक्ष होता है। अन्तिम श्रेणी में पंजाब, असम और राजस्थान आते हैं। इनमें जिलाधीश जिला परिषद का सदस्य होता है परन्तु निर्णय लेने में सक्रिय भूमिका नहीं होती है।

विगत वर्षों में जिलाधीश की भूमिका में एक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है। वह उत्कृष्ट सूत्र अधिकारी से स्टाफ अधिकारी में परिवर्तित हो गया है। भौतिक कार्य अब वह कम करता है परन्तु नियन्त्रण, परीक्षण, समन्वय, स्कीम और योजना का समग्रीकरण, कर्मचारी तन्त्र के निर्माण, लोगों को सहयोग और भागीदारी, लोगों को सूचित और शिक्षित करना आदि स्टाफ कार्य में अधिक समय देता है। जन-शिकायतों के निवारण हेतु शासन पर बढ़ते दबाव के कारण जिलाधीश को उससे अधिक से अधिक सम्बद्ध करने के प्रयत्न किये जाते हैं। प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुशंसा की थी कि जिलाधीश को दौरे के समय जन-शिकायतों को जानने और स्थल पर ही उनके निराकरण का प्रयास करना चाहिए।

जिला स्तर पर स्थापित अन्य विभागों के बीच तालमेल स्थापित करने और कार्यक्रमों को लागू करने में निस्सन्देह जिलाधीश की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। सिद्धान्ततः विभागाध्यक्ष जिलाधीश से स्वतन्त्र होते हैं और अपने-अपने विभागों के प्रमुख। लेकिन व्यवहार में जिलाधीश किसी भी कार्यालय में जाने के लिए स्वतन्त्र है, सुझाव और परामर्श दे सकता है। राजधानी में जिला विभाग के प्रमुख के किसी भी कर्मचारी-अधिकारी के आचरण के सम्बन्ध में लिख सकता है। इसके अतिरिक्त विभागाध्यक्ष जिलाधीश की शुभेच्छा पर निर्भर हैं, जैसे—भूमि-अधिग्रहण, कानून-व्यवस्था, यातायात, लोक-सम्पर्क, विकास कार्यक्रम, बाढ़ आदि जैसी आपात-स्थिति। इन सबसे अधिक जिले में जिलाधीश राज्य शासन का प्रतिनिधि है। वह अन्य विभागों की तुलना में अधिक व्यापक जनहित का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार विभागाध्यक्ष अपने विभाग के हित में जिलाधीश का सानिध्य लाभ लेते हैं। जिले का कोई भी विकास कार्य जिलाधीश के सहयोग के बिना सम्भव नहीं है। वह सरल रूप में 'बराबर वालों में प्रथम' या जिले टीम का कप्तान है और राज्य शासन के प्रति जिले में शासन के विभागों के कार्यों और उनके बीच उचित समन्वय के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार इस क्षेत्र में जिलाधीश की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अनुभवों और अनुसन्धानों से यह तथ्य सामने आया है कि प्रशासनिक सेवा के अधिकारी अधिकांशतः नियामकीय कार्यों में अधिक व्यस्त रहते हैं और विकास कार्यों के लिए पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं जिसका विकास प्रशासन और कार्यों पर नकारात्मक असर होता है। अतः अब माँग की जा रही है कि नियामकीय तथा विकास कार्यों के लिए अलग-अलग अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए। इस दिशा में शुरूआत की जा चुकी है। यह जरूरी है कि विकास कार्यों के विशेषज्ञ नियुक्त किये जाने चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था से जहाँ एक ओर सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों की समस्या सुलझेगी, दूसरी ओर विकास एवं प्रशासन में विशेषज्ञता के परिणामस्वरूप विकास प्रशासन को गति मिलेगी तथा ग्रामीण विकास अधिक तेज गति से होगा।

1960 में जिला प्रशासन के क्षेत्र में राजस्व-अधिकारी जिलाधीश की भावी-भूमिका और हैसियत पर रोचक विवाद उठा। यह विवाद आज भी बना हुआ है। 1958 के बाद पहली बार परम्परागत रूप में जिलाधीश की उपयोगिता पर सन्देह प्रकट किया गया है। पंचायती राज प्रारम्भ करने का मुख्य उद्देश्य जिला-स्तर पर उत्तरदायी शासन स्थापित करना था ताकि परम्परागत अर्थ में 'जिलाधीश' का महत्व कम हो जाय। सब कुछ होते हुए भी "जिलाधीश का दुर्ग थोड़ा विचलित होने के अतिरिक्त ज्यों का त्यों खड़ा है।" तीन तत्व इस स्थिति की व्याख्या करते हैं। प्रथम, जिलाधीश का अनोखा पद हमें ब्रिटिश शासन से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ।

वह भारतीय नौकरशाही की प्रसिद्ध उक्ति 'लौह आवरण' की धुरी है। द्वितीय, विशिष्ट अर्थ में जिलाधीश को छोड़कर कोई भी अन्य पदाधिकारी जनहित का प्रतिनिधि होने का दावा नहीं कर सकता। तृतीय, लोग विगत दो सौ वर्षों से अधिक समय से जिला-स्तर पर उसे 'सरकार' का प्रतीक मानते आ रहे हैं, जो आज भी है, और उससे यह अपेक्षा करते हैं कि वह कार्य का अन्तिम बिन्दु है। आज भी वह शासन का 'आँख और कान' है और उसे किसी भी कार्य को किसी भी समय करने के लिए सक्षम साधन माना जाता है। अपनी लम्बी विकास-यात्रा में इस पद ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। आज पंचायती राज व्यवस्था में जिलाधीश की चाहे जो भी स्थिति हो, जिला प्रशासन और पंचायती राज संस्थाओं में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारना ही पड़ेगा। इस सम्बन्ध में **वी. टी. कृष्णामाचारी** का यह कथन महत्व रखता है कि "जिलाधीश की भूमिका में परिवर्तन हुआ है किन्तु ह्रास नहीं हुआ है क्योंकि उसको अब लोकतान्त्रिक संस्थाओं को पथ-प्रदर्शन करने का कार्य प्राप्त है।" अन्त में, आज के सन्दर्भ में जिलाधीश के महत्व के सम्बन्ध में कहे गये **साइमन कमीशन** द्वारा अभिव्यक्त विश्वास आज भी सत्य हैं कि "भारत का शासन किसी भी संविधान के अन्तर्गत किया जाय, कोई भी शासन जिला अधिकारी के बिना नहीं कर पायेगा।"

विकास में खण्ड (ब्लॉक) अधिकारी की भूमिका

ग्रामीण विकास में विशेषकर ब्लॉक स्तर पर खण्ड विकास अधिकारी का विशेष महत्व है। इसलिए इसे विकास प्रशासन में लघु कलेक्टर के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। यह पद प्रत्येक राज्य में देखने को मिलता है और अधिकांश राज्यों में खण्ड के प्रमुख अधिकारी को खण्ड विकास अधिकारी कहा जाता है। यह एक सामान्य प्रशासक होता है और उसका प्रमुख कार्य विभिन्न प्रसार अधिकारियों तथा ग्राम-सेवकों की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना है। राजस्थान में उसे विकास अधिकारी, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में खण्ड विकास अधिकारी, पंजाब में खण्ड विकास एवं पंचायत अधिकारी, और तमिलनाडु में पंचायत जूनियर कमिश्नर कहा जाता है।

भर्ती—खण्ड विकास अधिकारी राज्य का राजपत्रित अधिकारी होता है। उसका चयन प्रायः राजस्व या विकास विभागों में से किया जाता है। यह पर्याप्त योग्य, क्षमता वाला और अनुभवी अधिकारी होता है। मध्य प्रदेश में वह राज्य प्रशासनिक सेवा से चुना जाता है। मध्य प्रदेश में लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित बी. डी. ओ. का प्रशिक्षण 'ग्रामीण विकास संस्थान' जबलपुर में होता है। **बलवन्तराय मेहता दल** ने यह सुझाव दिया था कि कम से कम 25% बी.डी. ओ. के पद कृषि, सहकारिता तथा पंचायत विभागों से पदोन्नतियों द्वारा भरे जाने चाहिए। वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत ये प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा भरे जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये पद राज्य प्रशासनिक सेवाओं से प्रतिनियुक्ति द्वारा या निम्न पदों से पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं। पंजाब और हरियाणा में लगभग 50% पद राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा भरे जाते हैं शेष पदों के लिए पदोन्नति द्वारा भरा जाता है। राजस्थान में पदों को या प्रतिनियुक्तियों से या फिर प्रसार कर्मचारियों को पदोन्नति द्वारा भरा जाता है।[5] आन्ध्र प्रदेश में राजस्व अथवा गैर-राजस्व विभागों में से 46 : 60 के आधार पर भर्ती की जाती है।[6] मध्य प्रदेश की भाँति उत्तर प्रदेश में यह पद लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर भर्ती की जाती है। न्यूनतम योग्यता स्नातक है।

प्रशिक्षण—बी.डी. ओ. विकास अधिकारी होता है और सामुदायिक विकास के कार्यों को लागू करने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है अतः व्यापक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

प्रशिक्षण का समय प्रत्येक राज्य में अलग-अलग अवधि का होता है। सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रम में एक या दो महीने के अभिविन्यास पाठ्यक्रम के बाद कार्य-परीक्षण पाठ्यक्रम सम्मिलित होते हैं।

कार्य—बी. डी. ओ. पंचायत समिति का सचिव और मुख्य कार्यपालिका अधिकारी भी होता है। पंचायती राज संस्थानों की स्थापना के बाद उसके कर्तव्य को इस प्रकार कल्पित किया गया है :

1. खण्ड अभिकरण तथा प्रशासन के उच्च स्तरों से सम्पर्क स्थापित करके खण्ड संगठन की एकता तथा दल-भावना को सुरक्षित रखना।
2. एक प्रमुख कार्यकर्ता समिति की व्यवस्था में एक मूल अधिकारी के रूप में प्रशासकीय कर्तव्यों का बड़ा भाग स्वयं निभाता है।
3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम के उद्देश्य तथा विधि के मुख्य प्रवक्ता के रूप में कार्य करना तथा यह सुनिश्चित करना कि उनका पूरा दल उन्हें समझता है तथा उसका अनुसरण करता है।

इसके प्रमुख कार्य निम्न हैं :

1. इसका प्रमुख कार्य अपने विकास खण्ड में कार्य प्रसार अधिकारियों की सहायता से पंचायत समिति द्वारा निर्धारित निर्णयों को लागू करना है।
2. उच्च अधिकारियों से प्राप्त आदेशों का क्रियान्वयन करता है तथा इसके लिए समय-समय पर अपने अधीनस्थ स्टाफ की बैठकें आयोजित करता है।
3. यह विभिन्न एकीकृत योजनाएँ तैयार करता है। इन योजनाओं को बनाने के बाद उन्हें लागू करवाता है।
4. खण्ड के विकास से सम्बन्धित प्रशासनिक स्टाफ की कार्यकुशलता में वृद्धि करने के प्रयास करता है।
5. शिकायतों को सुनकर उनका निराकरण करने का प्रयास करता है।
6. अपने कार्यों की प्रगति की सूचना उच्च अधिकारियों को प्रेषित करता है।
7. खण्ड विकास अधिकारी सरकार और ग्रामीण जनता के बीच सम्पर्क का कार्य करता है।

वास्तव में खण्ड स्तर पर ग्रामीण विकास बी. डी. ओ. पर ही निर्भर करता है। ब्लॉक में उसकी उपादेयता को कोई चुनौती नहीं दे सकता है। नेता भी खण्ड प्रशासन स्तर पर बी. डी. ओ. के मार्ग निर्देशन और सहयोग पर निर्भर करते हैं।

भूमिका

विकास खण्ड अधिकारी का विकास कार्यों में भूमिका का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है :

विकास खण्ड अधिकारी मुख्य कार्यपालिका अधिकारी होता है। इस रूप में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इस रूप में खण्ड स्तर के कार्यक्रमों और योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है। सच तो यह है कि ग्रामीण विकास के सफल क्रियान्वयन का दारोमदार इसी पर निर्भर करता है। उसके सफल प्रयासों पर ही कार्यक्रमों की सफलता निर्भर

करती है। जिस प्रकार देश के प्रशासन में मुख्य कार्यपालिका विशेष स्थान, महत्व एवं भूमिका होती है वही खण्ड स्तर पर विकास अधिकारी की स्थिति एवं महत्व होता है।

इसकी दूसरी भूमिका प्रसार अधिकारियों के दल के नेता के रूप में है। नेता वह है जो अपनी टीम में उत्साह, एकता और मिल-जुलकर कार्य को पूरा करने की इच्छा शक्ति उत्पन्न करता है। जिस प्रकार खेल में कप्तान के कुशल नेतृत्व में टीम भावना के कारण विजय प्राप्त होती है उसी प्रकार बी. डी. ओ. भी अपनी टीम को कुशल नेतृत्व प्रदान कर अपने लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। इसलिए आजकल राजनीतिक नेतृत्व के साथ-साथ प्रशासनिक नेतृत्व को भी महत्व दिया जा रहा है। प्रसार अधिकारियों के दल के नेता के रूप में वह अपने खण्ड में विकास कार्यक्रमों को प्रभावशाली ढंग से लागू करने में अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर प्रशासकीय नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की भूमिका भी निभाता है। साथ में विभिन्न प्रसार अधिकारियों में समन्वय सुनिश्चित करता है तथा अनुशासन बनाये रखता है। वह विभिन्न प्रसार अधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं की बैठकें बुलाता है और निश्चित की गयी रण-नीति के अनुसार कार्य सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जिससे कार्य समय पर पूर्ण किये जा सकें।

खण्ड विकास अधिकारी की कार्यालय प्रमुख के रूप में भूमिका अपना अलग महत्व रखती है। यहाँ उसकी प्रशासनिक क्षमता को देखने का सुअवसर प्राप्त होता है। इस रूप में वह कार्यालय प्रबन्ध के कार्यों को सम्पादित करता है। जैसे कार्यालय प्रबन्ध में सुधार, समय से कार्य पूर्ण करना, उच्च अधिकारियों को विवरण एवं रिपोर्ट भेजकर कार्य की यथास्थिति से अवगत कराना है। उसे वित्तीय शक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं और उसे अपने कार्यालय के लेखा-जोखा का व्यवस्थित हिसाब रखना पड़ता है। वह खण्ड समिति के लिए धन प्राप्त करने तथा उसको खर्च करने का अधिकारी भी होता है। वित्त क्षेत्र में उसकी भूमिका विशेष महत्व रखती है। धन का सदुपयोग ठीक से सुनिश्चित करना इसी का कार्य है।

पंचायत समिति के सम्बन्ध में भी उसकी भूमिका होती है। इसमें समिति की विचारण सभाओं में सम्मिलित होना, समिति की विशेष बैठकों को बुलाना, कार्य सूची का प्रचार करना, सभाओं के कार्यवृत्त लिखना, तथा पीठासीन अधिकारी को सभाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए परामर्श देना तथा सहायता देना सम्मिलित है। इस प्रकार इन कार्यों को कुशलतापूर्वक चलाने में उसकी भूमिका प्रमुख होती है। इसके अतिरिक्त विकास अधिकारी खण्ड में विद्यमान पंचायतों पर अपना संस्थागत, प्रशासकीय तथा वित्तीय नियन्त्रण और पर्यवेक्षण लागू करके अपनी भूमिका निभाता है। अन्त में, उसे अपने क्षेत्र की कानून-व्यवस्था की जानकारी जिलाधीश/उपमण्डल अधिकारी को देनी होती है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विकास खण्ड अधिकारी को न केवल व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं बल्कि खण्ड में उसकी भूमिका निस्सन्देह अद्वितीय है। इसलिए खण्ड स्तर पर उसे 'लघु कलेक्टर' कहा जाता है।

विकास में ग्रामीण स्वशासन की भूमिका

आज भारत में ग्रामीण स्थानीय शासन की जो व्यवस्था विद्यमान है उसका श्रेय उस समिति को है जिसका नाम "सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल" था। उसके अध्यक्ष बलवन्तराय मेहता थे, इसलिए सामान्य तौर पर उसे 'बलवन्तराय मेहता समिति' के नाम से जाना जाता है। ऐसा बहुत ही कम देखने को मिलता है कि जिस समिति का

नाम इतना अनाकर्षक हो उसका कार्य इतना आकर्षक और महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ हो। स्थानीय शासन के इतिहास में शायद ही कोई ऐसी समिति रही हो जिसने इससे अधिक व्यापक और आधारभूत सुधार करने में योग दिया हो।[7] मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत अनुशंसाओं में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का जो प्रतिमान प्रस्तुत किया गया उसे कालान्तर में पंचायती राज के नाम से जाना गया। इस समिति ने कुछ मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिससे लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की भावना को स्थापित किया जा सके। ये हैं :

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण हेतु प्रस्तावित पंचायती राज की योजना ग्राम से लेकर जिला स्तर तक तीन स्तरीय होनी चाहिए। ये संस्थाएँ जीवन्त रूप से एक-दूसरे से सम्बन्धित रहें।
2. इन संस्थाओं को, शक्ति और दायित्वों का वास्तविक हस्तान्तरण होना चाहिए।
3. इन संस्थाओं को समस्त विकास कार्यक्रम सम्पादन का दायित्व दिया जावे।
4. उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए पर्याप्त वित्तीय स्रोत हस्तान्तरित किये जाने चाहिए।

पंचायती राज को संवैधानिक मान्यता मिलने के बाद व्यापक पैमाने पर लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू हुई है। इससे एक नवीन लोकतान्त्रिक ढाँचे की शुरूआत हुई है और विकास कार्यक्रमों को नवीन दिशा मिलेगी। अब लोकतन्त्र जनता के द्वार तक पहुँचेगा और विकास में जनसहभागिता बढ़ेगी और ग्रामीण जनता के लिए राष्ट्र की राजनीतिक प्रक्रिया में सम्मिलित होने का सुअवसर मिलेगा।

सामान्य रूप से ग्रामीण संस्थाओं की भूमिका को उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों का अध्ययन करने से समझा जा सकता है। वर्तमान पंचायती राज ढाँचा विकास के लक्ष्यों को पूरा करने एवं राजनैतिक विकास की गति को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील है। यहाँ पंचायती राज संस्थाओं की राजनैतिक एवं विकास क्षेत्र में भूमिका का अध्ययन करेंगे।

राजनैतिक विकास को ग्रामीण संस्थाओं की स्थापना से नवीन दिशा मिली है। ग्रामीण स्तर पर राजनीतिकरण की प्रक्रिया का शुभारम्भ हो चुका है। लोगों में पहले की तुलना में राजनीतिक चेतना में वृद्धि हुई है। विकेन्द्रीकृत लोकतान्त्रिक प्रणाली में सामान्य वयस्क मताधिकार, गुप्त मतदान तथा राजनीतिक दलगत गतिविधियों के कारण ग्रामीण लोगों में एक नयी जागृति उत्पन्न हुई है। इससे विकास कार्यों में जनता की सहभागिता बढ़ेगी और अपने क्षेत्र के विकास के लिए जागृति उत्पन्न होगी।

ग्रामीण परिवेश से उत्पन्न नवीन दृष्टिकोण, सोच, विचारधारा लिये हुए नवीन नेतृत्व का जन्म होगा जिनकी अभिरुचि ग्रामीण क्षेत्र का विकास करना होगा। इससे हमें निचले स्तर से नवीन राजनीतिक नेतृत्व प्रदान होगा। ग्रामीण संस्थाओं के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक विकास की दिशा में जो पहल की है वह सराहनीय है। समय के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक गतिशीलता प्रदान करने की आवश्यकता है। इससे राजनीतिक प्रणाली की क्षमता में वृद्धि होगी और हमारी लोकतान्त्रिक जड़ें मजबूत होंगी।

ग्रामीण संस्थाएँ विकास कार्यों में योगदान प्रदान कर रही हैं। भारत विकासशील देश है और ग्रामीण विकास को हमारे यहाँ प्राथमिकता प्रदान की गयी है। 73वें संवैधानिक संशोधन के बाद राज्य सरकारों ने ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में पंचायतों को पर्याप्त अधिकार प्रदान किये हैं और पंचायतें इस दिशा में अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने का प्रयास कर रही हैं। वैसे प्रारम्भ

से ही हमने पंचवर्षीय योजनाओं और विकास कार्यों में पंचायतों की केन्द्रीय भूमिका को स्पष्ट रूप से स्वीकारा है। तमिलनाडु, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश तथा मध्यप्रदेश में पंचायती राज के विभिन्न स्तरों की कार्य प्रणाली के कुछ पहलुओं का विचारकों द्वारा किये अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पंचायती राज संस्थाओं ने कृषि उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जैसे गुजरात और आन्ध्रप्रदेश में ये संस्थाएँ सड़कों, सिंचाई के लिए ऋणों को लागू करने, कृषि-उपकरणों, बीज, कीटनाशकों तथा खाद के आबंटन, आदि पर दिये जाने वाले निर्देशों से इस क्षेत्र में काफी सुधार लाने में सफल रही हैं। नवीन पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत पहले की तुलना में पंचायती संस्थाओं को अधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं जिससे वे विकास कार्यों में सक्रिय भूमिका निभा सकें। इस दिशा में कुछ राज्यों में अपेक्षा के अनुकूल तो कुछ राज्यों में अपेक्षा से कम सफलता प्राप्त हुई है। पिछले पाँच वर्षों के अनुभव के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष विकास कार्य में आने वाली बाधाओं को दूर करना चाहिए जिससे पंचायतें विकास कार्यों को अधिक गति प्रदान कर सकें।

पंचायती राज संस्थाएँ कमजोर वर्गों के हितों को देखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। अनेक समितियों ने इस भूमिका पर बहुत बल दिया है। 1994 के बाद विभिन्न राज्यों में पंचायती राज विधानों में पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाओं, पिछड़े वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित गठित समितियों में कमजोर वर्ग के सदस्यों को सम्मिलित किया जा रहा है। यह निश्चित है कि पहले की तुलना में पंचायतो राज संस्थाओं के माध्यम से पिछड़े वर्गों में विकास कार्यों के प्रति जागृति आयी है किन्तु अभी भी इस दिशा में और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है।

शिक्षा, स्वास्थ्य, पीड़ितों का उत्थान करने में भी पंचायती राज संस्थाएँ समुदाय के लिए केन्द्रीय भूमिका निभा सकती हैं। मध्य प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा पंचायती राज संस्थाओं को सौंप दिया है। भर्ती-हस्तान्तरण की शक्तियाँ पंचायतों के पास हैं। मध्य प्रदेश सरकार ने 1997 पंचायती राज संशोधन विधेयक में त्रिस्तरीय पंचायतों के बीच अन्तरसम्बन्धी, ग्रामसभा में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने, तीनों स्तरों पर पंचायतों के अधिकार एवं दायित्वों का स्पष्ट विभाजन करने, सरपंचों तथा जिला परिषद के अध्यक्षों को अविश्वास प्रस्ताव के विरुद्ध निगरानी में जाने का अधिकार देने, साथ ही पंचायती राज संस्थाओं के लिए संसाधन जुटाने और उसके वितरण की दृष्टि से जिला पंचायत राज निधि स्थापित करने का प्रस्ताव संशोधन विधेयक में किया गया है। अब ग्रामसभा की बैठकों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए यह व्यवस्था की गयी है कि कोरम में न्यूनतम एक-तिहाई महिला सदस्य की उपस्थिति होने पर ही ग्रामसभा की बैठक हो सकेगी, अन्यथा नहीं। सरपंच, उपसरपंच, जिला तथा जनपद पंचायत के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने का प्रावधान है। पंचायतों को अधिक राजस्व प्राप्त करने का प्रावधान भी विधेयक में किया गया है। उपरोक्त समस्त प्रयास पंचायती संस्थाओं को अधिक सशक्त और सक्रिय बनाने के लिए ही किये गये हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे हम सही दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। इस दिशा में ग्रामीण जनता की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जा सकता है कि हमारी प्रगति धीमी है।

इसी प्रकार आर्थिक-सामाजिक विकास की दिशा में पंचायतों द्वारा जो भूमिका निभायी जा रही है वह निराशाजनक नहीं है भले ही पूर्णतया सन्तोषपूर्ण न हो। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि बहुत कुछ मिट्टी की प्रकृति, भूमि प्रथाओं, मानवीय संसाधनों की उत्पादकता तथा राज्य और

राष्ट्रीय स्तर राजनैतिक नेतृत्व पर निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि पंचायती राज संस्थाओं की सहायता के बिना ग्रामीण क्षेत्रों में विकास सम्भव नहीं है। अत: हमें इस दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है कि किस प्रकार इन संस्थाओं को अधिक सक्रिय कैसे बनाया जाय जिससे अपेक्षित परिणाम प्राप्त किये जा सकें।

विकास में नगरीय संस्थाओं की भूमिका

सामान्यत: आम जनता के मन में नगरीय संस्थाओं के प्रति अच्छी धारणा नहीं है। जबकि वास्तविकता यह है कि किसी न किसी प्रकार की स्थानीय निकायों के बिना पूर्ण नहीं होती है। स्थानीय निकाय लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में विशेष भूमिका निभाती है। स्थानीय स्वशासन जनता को अपनी समस्याओं के समाधान के लिए स्थानीय ज्ञान, रुचि और उत्साह को जुटाने का सर्वोत्तम अवसर प्रदान करता है। यह भी सत्य है कि स्थानीय सरकार का ढाँचा कैसा भी हो, यह सामाजिक प्रणाली का एक अभिन्न अंग है जो अपने देश के इतिहास, सांस्कृतिक नीति, अर्थ-व्यवस्था, भूगोल और जनसाहित्य की स्थिति के अधीन फलता-फूलता है। इसी से जुड़े होते हैं सामाजिक मूल्य। हमें इसे बनाये रखना है और यह कार्य स्थानीय निकायों पर विश्वास एवं अधिक शक्तियाँ प्रदान करके किया जा सकता है। अत: आवश्यकता है नगर निकायों की मानसिकता बदलने और नगर के विकास में अभिरुचि पैदा करने की। संविधान के 74वें संशोधन से संवैधानिक मान्यता मिलने के बाद यह आवश्यक हो गया कि नगर निकायों के प्रति जो अविश्वास का वातावरण पैदा हुआ है उसे समाप्त करके उन्हें नवीन जीवन शक्ति प्रदान की जाये। यह हमारे लोकतन्त्र के अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

नगर संस्थाओं को जनकल्याण कार्यों को सम्पन्न करने के लिए राज्य विधानों द्वारा शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। उन्हें संरक्षक सेवाएँ, निजी सेवाओं, पर्यावरण से सम्बन्धित सेवाएँ, व्यापारिक सेवाएँ, सांस्कृतिक मनोरंजन सेवाएँ और विकास सेवाएँ सम्पन्न करने की शक्ति प्राप्त हैं। पिछली कार्यात्मक त्रुटियों के बावजूद, शहरी स्थानीय संस्थाएँ राजनीतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और लोकतान्त्रिक मूल्यों के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण इकाइयाँ हैं। यहाँ उनके विकास कार्यों की भूमिका का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

विकास कार्यों की प्रक्रिया में नगरीय संस्थाओं को एक सक्रिय, प्रभावशाली और महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश में। इसके लिए उन्हें राजनीति तथा कार्यक्रमों के स्थानीय प्रभाव का अनुमान लगाना पड़ेगा तथा उन्हें इस ढंग से कार्य करना होगा जिससे सामाजिक तथा आर्थिक विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सुविधा रहे। स्थानीय अधिकारी राष्ट्रीय नीतियों के ढाँचे में स्थानीय लोगों को स्थानीय गतिविधियों, योजनाओं और पर्यावरण में सम्मिलित होने का सुअवसर प्रदान कर सकते हैं। वे स्थानीय सहभागिता को बढ़ा सकते हैं। इस नवीन भूमिका में स्थानीय सरकार की निश्चित महत्वपूर्ण भूमिका है।

विकास कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों तथा शहरीकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं ने शहरी स्थानीय निकायों पर नवीन चुनौतियाँ एवं उत्तरदायित्व डाल दिये हैं। आर्थिक योजना का एक महत्वपूर्ण पहलू है औद्योगीकरण की तीव्र गति। औद्योगीकरण अपने आप में बुरा नहीं है किन्तु उससे जुड़ी हुई समस्याएँ निश्चित रूप से चिन्तनीय हैं। औद्योगीकरण और आर्थिक विकास की प्रक्रिया से गाँवों के लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं और शहरों की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मकानों,

सार्वजनिक सुविधाओं तथा सामुदायिक सुविधाओं में गम्भीर कमी उत्पन्न हो गयी है। अधिकतर स्थानों पर पर्यावरण विकृत हुआ जिसमें झुग्गी-झोंपड़ी नगर बस गये हैं, गन्दी बस्तियाँ बन गयी हैं, अनियन्त्रित भूमि उपयोग है, अपर्याप्त शहरी सेवाएँ हैं। इस स्थिति ने कुल मिलाकर असहनीय जीवन परिस्थितियाँ तथा समुदाय पर अतिरिक्त बोझ लाद दिया है। ऐसी स्थिति में शहरी निकायों की भूमिका और बढ़ जाती है। उन्हें योजनाबद्ध तरीके से शहरीकरण चाहिए और आम जनता को दैनिक जीवन की सामान्य सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिए। वर्तमान जीवन की यह बड़ी समस्या है और इसमें नगर निकायों को न केवल भूमिका निभानी है परन्तु निभाना अति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, इस दिशा में सक्रिय होकर समस्याओं का समाधान करना है।

नगर निकायों को केवल सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए ही उचित सेवाएँ प्रदान करना नहीं है बल्कि इनमें सामाजिक-सांस्कृतिक अनुकूलन के लिए उचित स्थितियाँ उत्पन्न करना भी सम्मिलित है। उन्हें ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना चाहिए जिनमें ग्रामीण प्रवासियों को सन्तुलित किया जा सके तथा उन्हें शहरों में मिलाया जा सके। औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के लिए सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं और लोगों के विश्वासों तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता। इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में भी नगर निकायों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है जिससे लोगों के साथ चल सके।

स्थानीय निकायों को अन्य क्षेत्रों में भी भूमिका निभाने की आवश्यकता है। समय और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल भूमिका भी बदलती रहती है। अब समय है सक्रिय भूमिका निभाने का। ये क्षेत्र हैं : स्थानीय निकाय लोकतन्त्र की प्रारम्भिक इकाई हैं इस रूप में लोकतन्त्र और सहभागिता का पाठ पढ़ाना आवश्यक है। यह महत्वपूर्ण कार्य इन्हीं निकायों का है। इसके साथ जुड़ा है स्थानीय सेवाओं का प्रबन्ध। स्थानीय जीवन रहने योग्य बनाने में नगरी निकायों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस दिशा में गतिशीलता लाने की आवश्यकता है। उन्हें आज की सबसे जटिल समस्या का समाधान करने के लिए आधुनिक शहरों के विकास के लिए एक व्यापक लम्बे समय के पूर्व योजना बनाने की जरूरत है जिससे शहरी जीवन सुखद और समस्याओं से रहित रहे। बड़े-बड़े शहरों में रहने वालों का जीवन दयनीय है। इस क्षेत्र में नगरी निकायों को चुनौती के रूप में सामने आकर समस्याओं के समाधान में अपनी भूमिका निभाने का सुअवसर मिला है। आगे आकर अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण करना उनका कर्तव्य है। इसी प्रकार स्थानीय संसाधनों का संग्रहण करने एवं उचित ढंग से उपयोग करने में, उनकी भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता है। अन्त में अपने क्षेत्र का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, प्रशासनिक दृष्टि से विकास करने में नगर निकायों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए जिन नगर निकायों ने अपने कार्यों को पूर्ण करने में सक्रिय योगदान दिया है, सफलता मिली है, और इसके विपरीत कार्य न करने वाली निकायों को असफलता मिली है। अन्त में, यह कहा जा सकता है कि विकास कार्यों को बनाने, क्रियान्वयन और मूल्यांकन में नगर निकायों को सदैव सक्रिय भूमिका निभाने की आवश्यकता है। आवश्यकता इस बात की है भूमिका निभाने में आने वाली बाधाओं को दूर किया जाना चाहिए जिससे नगर निकाय अपेक्षित परिणाम दे सके।

नागरिक और प्रशासन

लोक प्रशासन जनता के लिए एक माध्यम के रूप में विद्यमान है तथा दोनों का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिए यह कहा जाता है कि वह सरकार सर्वश्रेष्ठ है जिसमें नागरिक सन्तुष्ट रहते हैं। सरकार के निष्पादन और जनता की अपेक्षाओं में गतिरोध अथवा असन्तुलन होने से

राजनीतिक अस्थिरता जैसी स्थिति बन सकती है जो लोक प्रशासन के लिए खतरनाक है। कोई भी प्रशासन नागरिकों के सहयोग, सद्भावना, सहभागिता के बिना कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता। प्रशासन शून्य में कार्य नहीं करता, वह नागरिकों द्वारा नागरिकों के हित के लिए कार्य करता है।

नागरिक और प्रशासन का सम्बन्ध जनसहभागिता के अध्ययन के बिना अधूरा है। समाज की राजनीतिक प्रक्रियाओं में व्यापक जनभागीदारी की आवश्यकता और वांछनीयता की विभिन्न लेखकों और विचारकों ने बार-बार घोषणा की है भले ही दृष्टिकोणों में भिन्नता रही हो। लोकतान्त्रिक राजनीति का समस्त सिद्धान्त और व्यवहार सरकार और सरकारी पदों की जिम्मेदारियों और शक्ति का धारण एवं बँटवारा करने में सक्रिय नागरिक के शामिल होने की धारणा की व्यावहारिकता पर टिका होता है। जनसहभागिता की संकल्पना सर्वप्रथम प्राचीन यूनान में प्रचलित थी जहाँ सरकार के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र उत्पन्न हुआ। प्राचीन यूनान के प्रत्यक्ष लोकतन्त्रों में सभी महत्वपूर्ण निर्णय जनप्रिय सभाओं द्वारा लिये जाते थे एवं नागरिक राजकीय मामलों में सक्रिय भागीदार होते थे। स्वतन्त्रता और समानता अब लोकतान्त्रिक राज्य के प्रमुख लक्ष्य हैं। आधुनिक राज्यों के आकार और जनसंख्या में वृद्धि ने प्रत्यक्ष लोकतन्त्रों का संचालन असम्भव बना दिया है। इसलिए अब लोकतन्त्र प्रतिनिधि संस्थाओं के माध्यम से परोक्ष जनसहभागिता के सिद्धान्त पर कार्य कर रहे हैं।

'प्रशासनिक राज्य' के आधुनिक युग में अनेक लेखकों ने लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं के मानकों के प्रति प्रशासनिक राज्य की अनुक्रियाशीलता की समस्या पर चिन्ता व्यक्त की है। नौकरशाही के मनमाने दुरुपयोग से व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीति में लोगों की निगरानी और भागीदारी आवश्यक है। आधुनिक राज्यों की "नीतिगत निर्णय में प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता को समान महत्व देने के प्रयास स्वरूप और लोगों के लिए उन्हें प्रभावित करने वाले निर्णयों में हिस्सा लेने के अवसरों को यथासम्भव व्यापक बनाने के प्रयास स्वरूप निर्णय में प्रयुक्त मानदण्डों में व्यक्तिगत लोगों का ध्यान रखना चाहिए।"[8]

राजनीतिशास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि राजनीति में व्यापक जनसहभागिता की प्रमुख उपयोगिता यह सुनिश्चित करना है कि विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के निहित स्वार्थ बहुसंख्यक हितों पर न हावी हो जायें। ऐसी सम्भावनाओं से बचने के लिए लोक उत्तरदायित्व एवं लोक शिकायतों की निकासी के पर्याप्त उपाय एवं राजनीति में नागरिकों की भागीदारी के रास्ते होने चाहिये। तीव्र सामाजिक-आर्थिक विकास अधिकांश सरकारों, विशेषकर विकासशील देशों में जहाँ प्रशासन अनेक तरीकों से आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में लगा है। सरकार अपने सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों को नौकरशाही के माध्यम से प्राप्त करना चाहती है। विकासशील समाजों में प्रशासन की प्रमुख समस्या है अकर्मण्य राजनीतिक भागीदारी की धारणा पर आधारित एक अधिनायकवादी औपनिवेशिक प्रशासनिक विरासत को लक्ष्योन्मुख प्रशासन की आवश्यकताओं और माँगों के अनुकूल बनाना। ऐसे समर्थन के बिना विकास की सुविचारित योजना भी विफल हो सकती है। इस प्रकार नियोजन और कार्यान्वयन प्रक्रियाओं में उनका सक्रिय सहयोग और भागीदारी इनकी सफलता के लिए अनिवार्य है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने सामाजिक कल्याणकारी राज्य के लक्ष्यों को अपनाने से राज्य ने तेजी से सामाजिक-आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण का मुख्य उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले लिया है और इसके क्रियान्वयन के लिए इसने नौकरशाही की सहायता ली। साथ में सरकार के विकास प्रशासन में जनता की सक्रिय सहभागिता के लिए मुख्य तौर पर पंचायती राज

और सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। संक्षेप में, विकास की संकल्पना का सारांश लोगों के अपने ही प्रयत्नों (सहभागिता) द्वारा ग्रामीण समुदाय का चतुर्मुखी विकास करना है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए नागरिक और प्रशासन में सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए नागरिक और प्रशासन के सम्बन्धों को समझने के लिए जनसहभागिता का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। निष्कर्ष के रूप में, "विकास प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता प्रत्येक स्तर पर अनिवार्य है। जन की सहभागिता जन-आन्दोलन के रूप में होनी चाहिए क्योंकि वह विकास का केवल साधन ही नहीं बल्कि यह अपने आप एक विकास लक्ष्य है। जनसहभागिता विकास प्रक्रिया, विशेषकर भारत जैसे लोकतन्त्र की सफलता के लिए अनिवार्य है। इसके राजनीतिक और प्रशासनिक दोनों प्रकार के विकेन्द्रीकरण की अपेक्षा की जाती है।"[9]

नागरिक और प्रशासन के बीच सम्बन्ध राजनीतिक-प्रशासनिक प्रक्रियाओं का बहुत महत्वपूर्ण पहलू है, यह इन प्रक्रियाओं की प्रकृति के साथ बदलता है जो स्वयं राजनीतिक प्रणाली के प्रकार पर निर्भर करता है। यहाँ यह प्रस्तावित है कि हम लोकतान्त्रिक एवं विकासशील प्रजातन्त्र में नागरिक और प्रशासन के बीच सम्बन्धों पर ही चर्चा करें। यह उपयोगी होगा कि प्रथम इस सम्बन्ध के परिसर के सन्दर्भ में विचार किया जाये। इस सम्बन्ध के बहुत से पहलू हैं, जैसे राजनीतिक, सामाजिक और न्यायिक। एक स्वस्थ लोकतान्त्रिक प्रणाली में जनसाधारण द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि विधायिका का निर्माण करते हैं जो प्रशासन के कार्यकलापों की गतिविधियों पर निगरानी रखते हैं। साथ में वे यह सुनिश्चित करते हैं कि संविधान एवं विधि के प्रति सामाजिक आधार किस प्रकार बनाये रखे जायें एवं सार्वजनिक नीति को जन-आकांक्षाओं के अनुरूप किस प्रकार रखा जाय। इसके लिए प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप से निर्वाचित राजनीतिक कार्यपालिका प्रशासनिक प्रणाली के कार्यकलापों पर नियन्त्रण रखता है एवं निर्देश देता है। विधायिका एवं राजनीतिक कार्यपालिका की भूमिका की विशेषता केवल संगठन की संरचना पर ही निर्भर नहीं करती, अपितु उनमें कार्यरत व्यक्तियों के गुण पर भी निर्भर करती है। यहाँ पर सामाजिक परिवेश का समावेश होता है, जो प्रचलित नागरिकता के स्तर के साथ ही प्रतियोगी दलों की राजनीतिक स्वस्थ तथा संगठित दबाव-समूह की विधायिका एवं राजनीतिक कार्यपालिका के चयन में प्रभाव डालते हैं।

लोकतान्त्रिक राजनीतिक प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण गुण सहगामी, स्वतन्त्र न्यायपालिका के साथ कानून का शासन है। यदि संविधान एवं कानून के अन्तर्गत नागरिकों में समानता हो तथा न्यायालय जटिल विधियों एवं सामाजिक, राजनीतिक दबावों से परे हों, तब एक नागरिक यह अपेक्षा कर सकता है कि शासन उसके अधिकारों पर होने वाले अतिक्रमण को रोकने में सक्षम है अथवा कम से कम अतिक्रमण करने से हिचकता या मनमानी ढंग से उसके उचित हितों की उपेक्षा नहीं कर सकता। अधिकतर देशों में प्रशासन के स्वरूप एवं जटिलता में विगत कुछ वर्षों में काफी तेजी से विस्तार हुआ है। यह इसके कार्यों एवं अधिकारों, विशेषकर विकासशील देशों में परम्परागत कार्य, जैसे कानून एवं व्यवस्था, रक्षा, कर एकत्रित करना आदि के अलावा लोगों के विकास एवं कल्याण के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि के कारण हुआ है। आज नागरिक वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति के लिए प्रशासन पर पहले से अधिक निर्भर करता है। व्यक्ति अथवा उसके परिवार की प्रशासन पर इस तरह बढ़ती हुई निर्भरता बहुत अवसरों पर तनाव एवं झंझटों को जन्म देती है जिससे निराशा उत्पन्न होती है और कभी-कभी तो विमुखता आ जाती है। जन-असन्तोष एवं शिकायतों के अवांछित हस्तक्षेप को कम करने के लिए यह

उपयोगी होगा कि लोक प्रशासन को पुनर्संगठित, पुनर्विन्यसित एवं संवेदनशील किया जाये। हम इन्हें चार भागों में विभाजित कर चर्चा करेंगे :

1. प्रशासनिक सुधार;
2. प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण;
3. परामर्श समितियों की भूमिका को मजबूत करना; और
4. नागरिकों की समस्याओं को दूर करने के लिए उचित माध्यम का निर्माण।

1. **प्रशासनिक सुधार**—प्रशासनिक प्रणाली को आज बढ़ती हुई जनसंख्या, बढ़ते हुए शहरीकरण, विज्ञान एवं तकनीकी में विकास, अधिक राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा, लोगों की बढ़ती हुई इच्छाओं और आशाओं के बीच में कार्य करना पड़ रहा है। कभी-कभी इन परिवर्तनों से प्रशासन के सामने संकट खड़ा हो जाता है। प्रशासनिक प्रणाली को इस तरह योग्य बनाना है कि वह इन परिवर्तनों को नियन्त्रित कर सके, इन संकटों से उभर सके, और साथ ही नवीन जानकारी को विकास के उद्देश्य में लगा सके। प्रशासनिक योग्यता में भी सुधार के लिए यह आवश्यक है कि इसके साथ प्रशासनिक आचार-संहिता में भी सुधार किया जाय।

प्रशासकीय प्रणाली को सुधार प्रक्रिया में एक सुनिश्चित परिभाषित उद्देश्य, सम्पादन की स्पष्ट योजना और दीर्घकालिक अनुवर्तन के उपायों की जरूरत होती है। किसी देश की सरकार को यह निर्णय लेना होता है कि क्या प्रशासनिक प्रणाली के लिए व्यापक सुधार की आवश्यकता है अथवा केवल क्रमिक वृद्धि ही तात्कालिक आवश्यकताओं से निबटने के लिए पर्याप्त है ? यहाँ एक विकासशील लोक सेवा-नीति, जैसे भर्ती, पदस्थापन, विकास और प्रशासनिक प्रणाली में सही लोगों के चयन आदि की रचना करने की भी जरूरत है। इसके अतिरिक्त संगठन में अच्छे मानवीय सम्बन्धों को तेजी से बढ़ाने की आवश्यकता है जिससे पदसोपानीय और उपखण्डीय सम्बन्धों को कम किया जा सके। प्रशासनिक संस्कृति को और अधिक लोकतान्त्रिक बनाना है जिससे प्रशासकीय प्रणाली में न केवल अधिक उत्पादकता हो, बल्कि नौकरशाह भी जनसाधारण से व्यवहार करते समय अधिक मानवीय बने रहें। ज्यादातर शासन की ओर से प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ स्तर के अधिकारियों तथा दूसरे और बहुत से कर्मचारियों के बीच मन्त्राणात्मक तन्त्र का प्रावधान एवं उचित ढंग से कार्य सम्पादित करने से प्रबन्ध और कर्मचारियों के सम्बन्धों का और अधिक प्रजातन्त्रीकरण होता है। यह प्रशासनिक चरित्र सुधारने में सहयोग करता है।

यह सही है कि कार्यकुशल एवं मानवीय प्रशासन जनसाधारण के बीच में अच्छी छवि बनाता है तथा शिकायतों को कम करता है। एक सकारात्मक एवं रचनात्मक सहयोग प्रशासन और नागरिकों के बीच, एक प्रभावकारी संचार प्रणाली तथा साथ में जन-संस्थाओं के निर्माण द्वारा या सम्पादन कार्य में भागीदारी के द्वारा सम्भव हो सकता है। प्रशासनिक संगठनों में स्थित जन-सम्बन्ध इकाई को चाहिए कि वह प्रस्तुत प्रतिवेदनों के सारांश की व्याख्या करे और शासकीय नीतियों एवं मामलों पर नागरिकों के विचार प्रसारित करे। अन्य साधन, जैसे जनमत संग्रह हैं जिसके द्वारा जन-सम्बन्ध इकाई विभिन्न इकाई के कार्यों को समन्वित करते हैं, साथ ही शासक को नागरिक के विचारों की जानकारी देते हैं तथा नागरिक को सरकार की नीतियों की जानकारी देते हैं।

2. **प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण**—परम्परागत प्रशासनिक प्रणाली केन्द्रित होती है परन्तु प्रजातान्त्रिक प्रणाली में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की विभिन्नता है। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के

साथ-साथ विकेन्द्रीकरण का होना भी विकसित एवं विकासशील प्रजातान्त्रिक प्रणालियों दोनों में ही बहुत आवश्यक है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण मुख्य राजनीतिक कार्यपालिका, विधायिका तथा उच्च नौकरशाही को स्थानीय मामलों एवं जिम्मेदारियों से मुक्त कराता है, जिससे शासन के विभिन्न स्तरों पर प्रशासनिक गति एवं कार्यकुशलता बढ़ जाती है।

प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ाने के साथ-साथ यह विकेन्द्रीकरण नागरिकों को प्रशासन में भागीदारी का अच्छा अवसर प्रदान करता है। यह अवसर स्थानीय एवं क्षेत्रीय प्राधिकरणों पर अपने प्रतिनिधित्व के प्रारूप के रूप में हो सकते हैं, जो विकेन्द्रीकरण के लिए अधिकार एवं साधनों के साथ प्राधिकृत हैं। नागरिकों को शासन की नीतियों एवं कार्यक्रमों की अच्छी जानकारी होती है। अधिकतर ऐसी भागीदारी से केन्द्रीय सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों में अधिक वास्तविकता आती है। नागरिक की भागीदारी सरकार के कार्यक्रमों को अधिक स्थायित्व प्रदान करती है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण से प्रशासन और नागरिक एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं। इस कारण आजकल पंचायती राज प्रणाली को संवैधानिक संशोधन द्वारा पुनर्जीवित किया गया है।

परन्तु अत्यधिक विकेन्द्रीकरण हानिकारक एवं निरर्थक भी हो सकता है। ये भ्रष्टाचार, पक्षपात, प्रशासनिक अकार्यकुशलता एवं साधनों की बर्बादी के कारण बनते हैं। साथ में संकीर्ण निष्ठा को बल मिलता है। अतः यह आवश्यक है कि विकेन्द्रीकरण के प्रारूप एवं सीमा, ऐतिहासिक धरोहर, तत्कालीन समय की आवश्यकता और लोगों की या व्यक्तियों की सामान्य योग्यता के आधार पर होनी चाहिए।

3. **परामर्श समितियाँ**—प्रशासन में पिछले कुछ वर्षों में परामर्श समिति की स्वेच्छा एवं महत्व में वृद्धि हुई है। ये समितियाँ संविधान या विधि अथवा कार्यपालक निर्णय के अन्तर्गत गठित होती हैं और इनका कार्य शासन को परामर्श देना है। प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर परामर्श समितियाँ गठित करने के कुछ कारण हैं। प्रथम, नागरिकों एवं उनके संगठित समूहों को सरकार को जानकारी देने और उनके निर्णय व कार्रवाइयों को प्रभावित करने के लिए जिससे वे अधिक वास्तविक और उपयुक्त हो सकें, अवसर प्रदान करती हैं। द्वितीय, न केवल प्रजातन्त्र के विचार से, अपितु विकासशील प्रशासन के लिए भी जनसाधारण को राष्ट्रीय स्तर से स्थानीय स्तर तक नीति-निर्धारण एवं निष्पादन में शामिल कर कार्य को और प्रभावकारी एवं उद्देश्यपूर्ण बनाती हैं। इन स्थितियों में परामर्श समितियों की भूमिका कुछ स्थितियों में दक्षता के आधार पर और कुछ स्थितियों में परामर्श समितियों के आधार पर चुनी जाती हैं।

लोकतान्त्रिक शासन मुख्यतः जनसाधारण के क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व पर आधारित रहते हैं। इस विचार में सार यह है कि कोई भी क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व प्रणाली न तो पूर्णतः प्रतिनिधित्वपूर्ण होती है और न ही इसके निर्णय सदैव प्रभावी कार्यात्मक समूहों के संगत होते हैं। इसलिए इस बात के लिए भी वकालत की गयी है कि क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व को कार्यात्मक प्रतिनिधित्व के साथ प्रवृत्त करना चाहिए। एक संगठित परामर्श समिति में तर्कपूर्ण प्रतिनिधित्व अधिक होता है। ये समितियाँ शासन की जनसाधारण की आकांक्षा, उम्मीद एवं प्रतिरोधों की जानकारी देता है। ये शासन को अपनी नीतियों एवं कार्रवाइयों की कारगरता को जाँचने के अवसर प्रदान करते हैं।

फिर भी कुछ सुरक्षा उपाय हैं जो परामर्श समितियों को सामान्य रीति से कार्य करने देने को सुनिश्चित करने के लिए होते हैं। उन्हें किसी प्रशासनिक कार्यालय की निष्पक्षता में खतरा नहीं बनना चाहिए। उन्हें अनधिकृत रूप से उन प्रशासनिक अधिकारों को नहीं अपना लेना

चाहिए, जिससे कार्यालय में मतभेद उत्पन्न हो जाये। साथ ही प्रशासनिक दायित्व ही कमजोर पड़ जाय। उन्हें शासन का संरक्षण प्राप्त करने के लिए या संरक्षण देने के लिए सबल दबाव-समूह नहीं बनना चाहिए। इन्हें प्राधिकरण का प्रतिद्वन्द्वी भी नहीं बनना चाहिए और विधायिका के सम्मान को अधिकतर प्रशासनिक कार्यालयों का ध्यान अपने निर्णय की ओर आकर्षित कर ठेस नहीं पहुँचाना चाहिए। समय-समय पर इनकी प्रासंगिकता की समीक्षा करनी चाहिए जिससे वे समितियाँ भंग की जा सकें जिनका उपयोग अब खत्म हो गया हो। इन समितियों के सम्बन्ध में नियुक्ति, उद्देश्य, संरचना, प्रशासकीय कार्यालयों से सम्बन्ध, एक-दूसरे से सम्बन्धित समितियों का कार्यालय एवं समन्वयता आदि के लिए कुछ मार्गदर्शन की जरूरत होती है। परामर्श समिति की युक्तिमूलक प्रणाली नागरिकों एवं उनके संगठित समूहों में भागीदारी की भावना के साथ-साथ ही राजनीतिक एवं प्रशासनिक निर्णयों में वास्तविकता का समावेश करने तथा प्रशासक और लोगों के बीच समझ एवं सद्भाव को दृढ़ करने के लिए बहुत प्रयत्न करती है।

4. शिकायतों को दूर करना—यह सत्य है कि जब प्रभावकारी विधायी परिनिरीक्षा, उचित ढंग से प्रतिष्ठित मन्त्रीय उत्तरदायित्व, नियमों की प्रबल प्रणाली, तथा जवाबदेह एवं भागीदार प्रशासन उपलब्ध हो, तब प्रशासनिक शिकायत की सम्भावना काफी कम हो जाती है। यह भी स्वीकार करना चाहिए कि ये सब शर्तें अनिवार्य सीमा एवं तीव्रता के साथ आसानी से किसी देश में उपलब्ध न होने के कारण प्रशासनिक शिकायतें बढ़ रही हैं।

इन स्थितियों से निपटने के लिए विभिन्न देशों की सरकारों ने आन्तरिक प्रशासनिक प्रणाली को मजबूत कर एवं कुछ स्थितियों में वृहद कर, कुछ व्यवस्था की है। एक प्रशासनिक निर्णय अथवा कार्रवाई के विरुद्ध वरिष्ठ अधिकारियों अथवा मन्त्रियों से याचना करने की विधियों को कुछ देशों में सुधारा एवं स्पष्ट किया गया है। कुछ देशों में विशेष अधिकारी को शिकायत अथवा सुधार अधिकारी निर्दिष्ट किया जाता है जिसे नागरिक शिकायतें दर्ज कराते हैं। लेकिन जब वह प्रशासनिक संगठन से प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं करता अथवा उस प्रत्युत्तर से पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं होता है, तब वह शिकायत से सम्बन्धित अधिकारी के पास जाता है।

कुछ देशों में सामान्य प्रशासनिक व्यवस्था के अतिरिक्त प्रशासनिक न्यायाधिकरण की भी व्यवस्था है जो न्यायालयों के पूरक होते हैं। ये न्यायाधिकरण बिना अधिक खर्चे के नागरिकों को आसानी से उपलब्ध होते हैं जिससे न्यायिक प्रक्रिया और गतिशील हो गयी है। उदाहरण के लिए, फ्रान्स में प्रशासनिक न्यायाधिकरण में की गयी याचना के दो ही परिणाम हो सकते हैं—यह प्रशासनिक निर्णयों को समाप्त कर सकता है या अवैधानिक और मनमानी कार्रवाई के लिए हर्जाने के तौर पर वित्तीय अनुकम्पा प्रदान करने की व्यवस्था कर सकता है। परन्तु ये न्यायाधिकरण प्रशासन के विरुद्ध कोई जाँच-पड़ताल की पहल अथवा इसकी कार्रवाई के विरुद्ध कोई पहल नहीं कर सकता। दूसरा सबसे महत्वपूर्ण उपकरण 'ओम्बुड्समैन' है। भारत में इसे 'लोकपाल और लोकायुक्त' के प्रतिरूप में अपनाया गया है।

नागरिक और प्रशासन का महत्व दोनों के आपसी सम्बन्धों पर निर्भर करता है। प्रशासन मानव द्वारा मानव के लिए है। अतः नागरिकों के बिना प्रशासन का कोई अर्थ नहीं है। विकासशील कार्यों की सफलता और सरलता के नागरिक और प्रशासन में सहयोग का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रजातान्त्रिक मूल्यों और समाजवादी समाज की स्थापना तथा उसे सुदृढ़ करने के लिए भी नागरिक और प्रशासन के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध होना आवश्यक है। यदि नागरिकों की शिकायतों को बढ़ने दिया गया तथा प्रशासन के प्रति असन्तोष बढ़ता गया तो समाज में तनाव और अशान्ति को बढ़ावा मिलेगा। सामाजिक और आर्थिक असन्तोष के बढ़ने

से जनता में प्रशासन के प्रति अविश्वास तथा यदा-कदा हिंसात्मक आन्दोलन भी होते हैं। कश्मीर, असम और पूर्वी राज्यों में अशान्ति है और आतंकवादियों का बोलबाला है। ऐसे अशान्तिपूर्ण और भयपूर्ण वातावरण में सबसे अधिक अत्याचार और नुकसान नागरिकों को भुगतना पड़ता है। ऐसी स्थिति में नागरिक का प्रशासन से विश्वास उठ जाता है और दूरी की खाई बढ़ जाती है। विकास सम्बन्धी कार्यों, अमन-चैन, शान्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि नागरिकों का विश्वास सरकार और प्रशासन में बनाये रखा जाये। कोई भी सरकार ऐसी स्थिति की उपेक्षा नहीं कर सकती और न ही करना चाहिए। सरकार का प्रथम दायित्व प्रशासन के माध्यम से नागरिकों को सुरक्षा और अमन-चैन प्रदान करता है। इससे स्पष्ट है कि नागरिक और प्रशासन एक-दूसरे से कितने घनिष्ठ हैं और एक-दूसरे के सहयोग एवं विश्वास के बिना अपूर्ण हैं। अस्तु, देश की समृद्धि के लिए दोनों के बीच घनिष्ठ और सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध आवश्यक हैं।

स्मरणीय एवं आवश्यक है कि नागरिक और प्रशासन के बीच असन्तोष उत्पन्न करने वाले तत्वों को कम करने का प्रयास किया जाये। उदाहरण के लिए, वस्तुओं और सेवाओं को उपलब्ध कराने में होने वाली देरी को रोकना; असुविधा और परेशानी को कम करना; स्वस्थ और निष्पक्ष प्रशासन प्रदान करना; प्रशासन में विलम्ब, भ्रष्टाचार आदि को कम करने के प्रयास आदि बातें आती हैं। अतः सरकार को यथासम्भव समय के अनुकूल नागरिकों की शिकायतों का समाधान करने के प्रयास करते रहना चाहिए जिससे नागरिकों का प्रशासन में विश्वास बना रहे। संक्षेप में, नागरिक और प्रशासन के बीच सहज एवं यथार्थपूर्ण सम्बन्ध को सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक प्रयास किया जाना चाहिए।

विकसित और विकासशील देशों में लोक प्रशासन

विकास, आधुनिकीकरण या आधुनिकता शब्द सापेक्षिक हैं जिनका प्रयोग जटिल सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के लिए किया जाता है। **प्रो. ए. वीडनर** के अनुसार, "विकास प्रशासन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए संगठन का मार्ग-दर्शन करता है। यह मुख्य रूप से एक कार्योन्मुख एवं लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक प्रणाली पर जोर देता है।"[10] किसी समाज के आर्थिक, राजनीतिक संचार एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन की एक व्यवस्थित प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है। **आमण्ड** ने 'परिवर्तन' शब्द का प्रयोग विकास के समानार्थक के रूप में किया है। उनका मत है कि जब राजनीतिक व्यवस्थाएँ उनके सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के अनुकूल नवीन क्षमताएँ प्राप्त कर लेती हैं तो उनमें परिवर्तन आ जाता है। राजनीतिक परिवर्तन का मापदण्ड यह है कि राजनीतिक व्यवस्था नवीन समस्याओं के प्रति कार्यकुशल एवं स्वायत्त रूप से प्रतिक्रिया कर सके। विकास, आधुनिकता एवं आधुनिक शब्दों का जिस अर्थ में प्रयोग किया जाता है उस दृष्टि से यूरोप के देश और अमेरिका आदि को विकसित राज्य माना जाता है।

पश्चिमी यूरोप में राजनीति एवं प्रशासन के विकास का क्रम रोमन साम्राज्य से प्रारम्भ हुआ तथा मध्यकालीन सामन्त, 16वीं से 18वीं सदी तक सर्वाधिकारवाद शासन से आधुनिक काल के राष्ट्र राज्यों तक आया है। इस ऐतिहासिक विकास की कुछ विशेषताओं का प्रभाव आज की राष्ट्र राज्य व्यवस्था पर भी देखा जा सकता है। रोमन कानून एवं प्रशासन की विरासत के रूप में कुछ प्रमुख पहलू हैं : (i) यह सिद्धान्त की राज्य का अध्यक्ष अपनी शक्तियाँ जनता से प्राप्त करता है। (ii) राज्य के अध्यक्ष के दो व्यक्तित्व हैं—व्यक्तिगत और सरकारी व्यक्तित्व। इन दोनों में अन्तर है। (iii) प्रशासनिक संरचना की प्रकृति पदसोपान युक्त होती है। (iv) सरकार के अनेक विभाग होते हैं।

रोमन साम्राज्य की पराजय के बाद अनेक शताब्दियों तक सामन्तवादी व्यवस्था रही। इस समय सरकार और प्रशासन सम्बन्धी रोमन मान्यताएँ समाप्त होने लगीं। मध्यकालीन व्यवस्था में अनेक संघर्ष चले और बाद में सर्वाधिकारवादी शासन-व्यवस्था स्थापित हुई। इस व्यवस्था में सम्राट और वंश-परम्परागत अधिकारियों द्वारा सत्ता का उपयोग किया जाता था। राजा की शक्तियों में कुलीन वर्ग ही हाथ बँटाते थे। फ्रांसीसी क्रान्ति एवं नेपोलियन युद्धों के काल में विशेषाधिकारों की व्यवस्था समाप्त हो गयी। राज्य का स्थान राष्ट्र ने ले लिया। राष्ट्र-राज्य की स्थापना होने पर लोक प्रशासन का जन्म हुआ। **मैक्स वेबर** के अनुसार, "यह परिवर्तन पैतृकता से नौकरशाही शासन की ओर था।" राजा सर्वेसर्वा होता था और उसके आचरण पर केवल परम्पराओं का अंकुश था। किन्तु बदलती परिस्थितियों के फलस्वरूप लोक प्रशासन के दायरे को विस्तृत कर दिया। राजा के स्थान पर राष्ट्र आया तथा राजा की पैतृकता के स्थान पर संगठित लोक सेवाएँ आयीं। लोक प्रशासकों के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। अब वे राजा के सेवक न रहकर जनशक्ति के साधन बन गये और कानून के अनुसार कार्य करने लगे। इस प्रकार शाही सेवा लोक सेवा में बदल गयी। पश्चिमी देशों का प्रशासन विकसित है और उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं :[11]

1. नौकरशाही में विशेषीकरण रहता है। भर्ती में योग्यता, क्षमता और विशेषज्ञता पर महत्व दिया जाता है।
2. राजनीतिक निर्णय बुद्धिपूर्ण, तर्कसंगत और धर्मनिरपेक्ष होते हैं।
3. प्रशासन और राजनीति के क्षेत्रों में वृद्धि हुई है। अब सर्वांगीण विकास को महत्व दिया जाता है।
4. प्रशासन और राजनीति में जन-सहयोग बढ़ा है।
5. आधुनिकीकरण धारणा किसी विशेष शासन प्रणाली से जुड़ी नहीं है। अब जनता को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

विकासशील राज्यों में लोक प्रशासन

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवाद की समाप्ति पर अफ्रीका, एशिया, लेटिन अमेरिका और मध्यपूर्व के अनेक स्वतन्त्र राज्यों का जन्म हुआ। स्वतन्त्र होने के बाद इन राष्ट्रों का मुख्य लक्ष्य विकास करना है। इन समस्त देशों को जो अपने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन करके उन्हें विकसित देशों के समक्ष लाना चाहते थे, सामूहिक रूप से विकासशील राष्ट्र कहा गया। विकास के साथ-साथ राजनीति और प्रशासन का रूप तथा कार्य भी इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में **एच. मरघानी** का कहना है कि "इन देशों में सामान्यतः शक्तिशाली सरकार, कार्यपालिका एवं अत्यधिक केन्द्रीयकरण पर जोर दिया जाता है क्योंकि यह मान लिया जाता है कि मजबूत सरकार और शक्तिशाली नेतृत्व के बिना राष्ट्रीय एकता, द्रुत आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य बन जाते हैं।"[12] विकासशील राष्ट्र विकसित राष्ट्रों में सफल सिद्ध प्रशासनिक प्रयोगों का परीक्षण करते हैं अथवा स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार विकासशील राष्ट्र अपने-अपने देश का अपने-अपने तरीकों से विकास प्रक्रिया में जुटे हुए हैं।

विकासशील समाज में लोक प्रशासन की विशेषताएँ

विकासशील देशों में लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं :

1. प्रशासन का औपनिवेशिक स्वरूप।
2. कार्यकुशल मानव शक्ति की कमी।
3. प्रशासन भाई-भतीजावाद से प्रभावित।
4. प्रशासन औपचारिकवाद अर्थात् औपचारिक स्वरूप एवं व्यावहारिक स्वरूप में भिन्नता।
5. नौकरशाही का उत्पादन कार्यों की अपेक्षा अन्य विषयों पर बल देना।
6. नौकरशाही को पर्याप्त व्यावसायिक स्वायत्तता प्राप्त होती है।
7. प्रशासनिक उत्तरदायित्व की कमी।
8. राजनीतिक अस्थिरता के कारण प्रशासन की कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव।
9. राजनीतिक संस्थाओं के विकास में सन्तुलन का अभाव तथा लोक प्रशासन पर कार्यों का बढ़ता हुआ बोझ एवं व्यक्ति के जीवन में राज्य का बढ़ता हस्तक्षेप।

विकासशील समाज में लोक प्रशासन की भूमिका

विकासशील लोक प्रशासन के माध्यम से विकास और स्थिरता लाने के प्रयास में कार्यरत हैं। विकासशील देशों की भूमिका बहुउद्देशीय है जिसे निम्नानुसार समझा जा सकता है :

1. सामाजिक परिवर्तन के रूप में भूमिका।
2. आर्थिक जीवन को नियमित और नियन्त्रित करना।
3. देश में राजनीतिक स्थिरता स्थापित करना।
4. लोकतान्त्रिक मूल्यों एवं शासन प्रणाली की स्थापना के रूप में।
5. नैतिक मूल्यों की स्थापना।
6. विकास नियोजित रूप में।
7. देश का सर्वांगीण विकास।
8. लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना।
9. सार्वजनिक उपक्रमों को उचित महत्व प्रदान करना।
10. नवीन एवं प्रशासनिक संगठनों का निर्माण।
11. क्रियान्वयन पक्ष को सशक्त बनाना।
12. विकेन्द्रीकरण की स्थापना।
13. जनता की सहभागिता एवं विश्वास प्राप्त करना।

समस्याएँ—विकासशील देश विकास की दिशा में बढ़ रहे हैं और सामयिक तकनीक और प्रशासनिक प्रक्रिया में परिवर्तन लाने का प्रयास कर रहे हैं फिर भी उनके प्रशासन के समक्ष कुछ समस्याएँ हैं :

1. प्रशासन में सामयिक परिवर्तन का अभाव।
2. प्रबन्धकीय कुशलता एवं नेतृत्व की कमी।
3. व्यावसायिक मानकों का अभाव।
4. प्रशासनिक नैतिकता की कमी।
5. विशिष्ट, तकनीकी, वैज्ञानिक, दक्ष सेवीवर्ग की कमी।